International Journal of Scientific Research in Engineering and Management (IJSREM)
Volume: 09 Issue: 10 | Oct - 2025 SJIF Rating: 8.586 ISSN: 2582-3930

'गङ्गासागरीयम्' महाकाव्य में अलंकार प्रयोग

डॉ. कार्तिककुमार पण्ड्या[1]

गङ्गासागरीयम्[2]' पं. विष्णुदत्त शुक्ल द्वारा प्रणीत काव्य कृति काव्यशास्त्रीय की अनेक विशेषताओं के कारण वस्तुतः स्तुत्य और अभिनन्दनीय है। गंगा और सागर को पं. विष्णुदत्त शुक्ल नए मानवीकृत कर सचेतन रूप में समासोक्ति के अध्ययन से नायक – नायिका रूप में निरूपित किया है, यहि इनकी मौलिक काव्य-उद्भावना है। जिसकी अद्भुत रसनिष्पत्ति से काव्य के सहृदय श्रोता-पाठक-चमत्कृत और आनन्दित हो जाते हैं। यही इस काव्य कृति और कृतिकार की महती सारस्वत सफलता है।

'गङ्गासागरीयम्' वस्तुतः एक प्रबन्ध काव्य है जिसमें गंगा जी के जीवन के एक अंश को सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। पतितपावनी गंगा का व्यक्तित्व मानव कोटि में नहीं, बल्कि देव कोटि में आता है। उनके अवतरण से लेकर सागर मिलन तक की कथा इस काव्य में चित्रित की गई है।

गंगा वैदिक कालीन सप्त सैन्धव प्रदेश की पूर्वी सीमान्त नदी थी, जिसका पूर्व से पश्चिम की प्रमुख नदियों के साथ गंगा तटवासी जन (गाङ्ग्य) के रूप में उल्लेख हुआ है। गंगा के लिये इस समय प्रयुक्त अन्य अभिधान जाह्नवी का भी ऋग्वेद में तथा शतपथ ब्राह्मण १३/४५/११ के अतिरिक्त उपनिषद ग्रन्थों में भी उल्लेख हुआ है। यद्यपि गंगा और यमुना का उल्लेख सिन्धु की सहायक तथा सरस्वती आदि नदियों के साथ हुआ है, तथापि वैदिक कालिन सप्त सैन्धव प्रदेश की प्रधान सात नदियों के समान इन्हे उतना महत्त्व नहीं मिला है, जितना सरस्वती, शुतुद्रि, परूष्णी, विपाशा, असिक्नी, वितस्ता, सिन्धु को। गंगा वर्णन की साहित्यिकता सर्वत्र संलक्ष्य है। गंगा से सम्बद्ध संस्कृत वाङ्मय में अनेक रूप है।

(१) वैदिक गंगा
(२) पौराणिक गंगा
(३) स्तोतात्मक एवं अर्वाचीन काव्य में वर्णित गंगा

अर्वाचीन संस्कृत काव्यों में गंगा गौरव सशक्त रूप से प्रतिपादित है। इन काव्यों में अनेक काव्यशास्त्रीय, छन्दःशास्त्रीय एवं वर्ण्य विषयगत विद्यमान है, जिनसें इन काव्यकृतियों की पर्याप्त प्रभावशालिता परिलक्षित है। इन काव्य कृतियों में कविवर स्व.पं. विष्णुदत्त शुक्ल विरचित 'गङ्गासागरीयम्', अर्वाचीन संस्कृत कवययत्री डॉ. कमला पाण्डेय प्रणीत 'रक्षतगङ्गाम्', साहित्यवारिधि डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी कृत 'गङ्गागरिमा', सुकवि विश्वेश्वर विद्याभुषण प्रणीत 'गङ्गासुरतरङ्गिणी', प्राचार्य के.वी.एन. अप्पाराव रचित 'गङ्गालहरी', सुविख्यात राजनेता चक्रवर्ती श्री राजगोपालाचार्य विरचित 'गङ्गातरङ्गम्', डॉ. मंजुलता शर्मा रचित 'गङ्गे' आदि उल्लेखनीय है।

इन अर्वाचीन सशक्त संस्कृत काव्य रचनाओं से गंगा का दिव्य स्वरूप एवं अनुपम माहात्म्य लोक मानस में प्रतिष्ठापित हुआ है, जिसमें गंगा भारत की नहीं, अपितु विश्व की सर्वश्रेष्ठ नदियों में मूर्धन्य मानी जाती है। शुक्ल जी ने इस काव्य में प्राय: अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विशेषोक्ति, अतिशयोक्ति, भ्रांतिमान्, सन्देह, मानवीकरण आदि अलंकारों का बड़ी सफलता के साथ प्रयोग किया है। अलंकार बड़े ही स्वाभाविक ढंग से गुम्फित है और उसमें कृत्रिमता के लेशमात्र भी दर्शन नहीं होते हैं।

यह बात शत प्रतिशत सही है कि शुक्ल जी कालिदास से बहुत प्रभावित है। यह प्रभाव इस काव्य पर आद्योपान्त लक्षित होता है, किन्तु यह अन्धानुकरण नहीं है। घटनाओं के चित्रण, शब्द सौन्दर्य, विविध छन्दों का प्रयोग इन सभी में कवि ने रघुवंशम्, मेघदूतम्, कुमारसम्भवम्, अभिज्ञानशाकुन्तलम् से प्रेरणा प्राप्त की है। कवि ने मेघदूतम् की परम्परा में ही गङ्गासागरीयम् में क्षेत्र को संस्कृत भाषा में प्राप्त मिलते ही नहीं हैं। शुक्ल जी की धारणा है कि कवि तो निरंकुश होता है। उसे कहीं-कहीं स्वतन्त्र मार्ग पर भी चलना चाहिये। कविता कामनी कान्त, वाणी विलास, महाकवि कालिदास में भी यह विशेषता दृष्टिगोचर होती है। कारकों के प्रयोग में भी शुक्ल जी ने कहीं-कहीं स्वतन्त्र मार्ग अपनाया है पर ऐसे उदाहरण नगण्य है।

[1] संशोधन अधिकारी, संशोधन-प्रकाशन विभाग, श्री सोमनाथ संस्कृत युनिवर्सिटी, वेरावल, जिल्ला – गीर-सोमनाथ, गुजरात - 362265, Email: kartikpandyav@gmail.com
[2] गङ्गासागरीयम्, पं. विष्णुदत्त शुक्ल, सं. डॉ. वृजलाल वर्मा, प्रयागराज, प्रथम संस्करण, १६८२

कवि ने प्राकृतिक सौन्दर्य चित्रण के साथ-साथ सम्बन्धित वातावरण के सृजन पर विशेष ध्यान दिया है। पर्वत, नदी, समुद्र, समतल भूमि, पशु, पक्षी, आदि के चित्रण में यह विशेषता विशेष रूप से परिलक्षित होती है। शरीर के उत्कर्षाधायक हारादि अलंकारों के समान शब्द एवं अर्थ के जो अस्थिर धर्म (स्थिर धर्म तो गुण होते है) उसकी शोभा का अतिशय उत्पन्न करते है। उन्हें अलंकार कहते हैं।

शब्दार्थमोरस्थिरा धर्मा ये शोभातिशामिनः ।
द्वारादिवदलंकाराः

ये अलंकार दो प्रकार के होते हैं - शब्दालंकार तथा अर्थालंकार । जो अलंकार शब्दार्थोभय-निष्ठ हैं, उन्हें कुछ आचार्यों ने उभयालंकार भी कहा है।

अलंकारों की प्रतिष्ठा सर्वप्रथम आचार्य भरत (ई.पू. चतुर्थ शताब्दी में) ने की। अपने नाट्यशास्त्र नामक ग्रंथ में उन्होंने उपमा, रूपक, दीपक और यमक को व्याख्यायित किया परन्तु यही चार अलंकार आचार्य भामह, दण्डी, उद्भट रूद्रट, कुन्तक, मम्मट, विश्वनाथ, जयदेव, जगन्नाथ के व्याख्यानों से उत्तरोत्तर विकसित होते हुये, आचार्य उप्पयदीक्षित प्रणीत कुबल्यानन्द (१७वी. शती ई०) में १२५ की संख्या में विभक्त हो गये। अलंकारों के विकास की यह कथा अत्यन्त रोचक एवं कौतुहलयुक्त हैं, जिसे उपर्युक्त आचार्यों के काव्यशास्त्रीय ग्रंथों के परिशीलन से समझा जा सकता है।

प्रस्तुत सन्दर्भ में इतना ही निर्दिष्ट कर देना पर्याप्त होगा कि गङ्गापरक काव्य-वाङ्मय समस्त संस्कृत काव्य-वाङ्मय का नवनीत हैं। क्योंकि उसमें काव्य, इतिहास तथा धर्म की त्रिवेणी विद्यमान हैं। भावसम्पदा की दृष्टि से, अलंकार की दृष्टि से, बिम्बविधान एवं छन्दयोजना की दृष्टि से गंगापरक काव्य सचमुच अप्रतिम है। प्रायः समस्त उत्तम अलंकारों का प्रयोग गङ्गावाड्.मय के सर्जक कवियों ने किया है। अब कुछ प्रमुख अलंकारों की सोदाहरण व्याख्या की जा रही है।

१. अनुप्रास अलंकार

अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्। (साहित्यदर्पणः)

स्वर की विषमता रहने पर भी शब्द अर्थात् पद अथवा पदांश के साम्य को अनुप्रास कहते हैं। इसके छेक, वृत्ति, लाट आदि अनेक भेद आचार्यों ने बताये हैं। यह अलंकार इतना सहज एवं स्वाभाविक है कि काव्य में बिना यत्न के ही पद-पद पर आता रहता है। उदाहरण दृष्टव्य हैं।

कस्तूरिका केसर गन्ध योगात्
स्वयं प्रकृत्याकृत चारू वेशात्।
ऐश्वर्य संभार निधेधरित्र्याः
नाकालकां राज्यमपाकरोति॥
(गङ्गासागरीयम्, गङ्गाराज्यवर्णनम्, १०)

प्रस्तुत उदाहरण में क-क, ध-ध, य-य, र-र में स्वर वैषम्य के रहते हुये भी पद्यांशों की आवृत्ति अनुप्रास उत्पन्न कर रही है।

शीर्षे श्लथः श्वेत जटा कलापो
यद्दृष्टि मार्गे सहसा समायात्।
प्रदर्शयत्येव तदन्य चिन्ता
न वर्तते लोक हितैषिताग्रे॥
(गङ्गासागरीयम्, गङ्गाकथारम्भः, ३८)

प्रस्तुत उदाहरण में रा-श की आवृत्ति अनेक बार है अतः अनुप्रास अलंकार दृष्टव्य है।

२. उपमा अलंकार

साधर्म्यमुपमा भेदे। (काव्यप्रकाशः)

(उपमान तथा उपमेय का) भेद होने पर दोनों के गुण, क्रिया व धर्म की समानता का वर्णन उपमा अलंकार है।

दया दृष्टिमेतेषु सापि क्षिपन्ति
दयन्यार्द्रतां शान्तिमेताश्च सर्वान्।
तथा कुर्वती निर्मलान् मार्गदेशान्
चचालोति लोकार्थ दात्रीव गङ्गो॥
(गङ्गासागरीयम्, गङ्गाबाललीला, ३२)
न सा केवलं निर्मलत्वं ससर्ज
समस्ते स्वके शोभने मार्गदिशे।
परं तं धनेनापि धान्येन पूर्ण
चकारोपकारण्मिं खण्डं प्रदेशम्॥
(गङ्गासागरीयम्, गङ्गाबाललीला, ३३)

३. उत्प्रेक्षा अलंकार

भवेत् संभावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना। (साहित्यदर्पणः)

उपमेय की उपमान के रूप में सम्भावना ही उत्प्रेक्षा है। उदाहराण दृष्टव्य है।

अन्यत्र यस्त्रासमते मनुष्यान्
प्रचण्ड तापैर्दहतीव पृथ्वीम्।
तुषारयोगेन निगृह्यमाणो
ग्रीष्मोऽस्य राज्येषु सुखं तनोति॥
(गङ्गासागरीयम्, राज्यवर्णनम्, १८)

४. रूपक अलंकार

तद्रूपकमभेदो यं उपमानोपमेययोः। (काव्यप्रकाशः)

उपमान एवं उपमेय के अभेद को ही रूपक कहते है। उदाहरण इस प्रकार है।

मकरझष पताकैः कूर्माशङ्खध्वजैस्वै
रतुलितरणवीरैस्सैन्य सञ्चालकैश्च।
समरविधि सहस्त्रै रक्षितं क्षेमपूर्ण
इयदवधिनजेये वर्तते तस्यराज्यम्॥
(गङ्गासागरीयम्, इतानुबन्धः, ३३)

५. श्लेष अलंकार

वाच्यभेदेन भिन्ना यद् युगपदभाषणस्पृशः।
श्लिष्यन्ति शब्दाः श्लेषोऽसावक्षरादिभिरष्टधा॥ (काव्यप्रकाशः)

अर्थ भेद के कारण भिन्न-भिन्न होकर भी जहाँ शब्द एक उच्चारण के विषय होते हुए श्लिष्ट (एकजरूप) प्रतीत होते है, वह श्लेष अलंकार है। उदाहरण दृष्टव्य है।
यत्स्यात् तत् स्तात् वालसूर्यः प्रभाते
मुक्ताभूतान् कोर्णनीहार बिन्दून्।
चित्वैकैकान् सप्रयासैः करैस्स्वैः
चिन्तापूर्व मार्जमायान पृथ्वीम्।।
(गङ्गासागरीयम्, गङ्गा-जन्म, १३)

६. पर्यायोक्ति अलंकार

पर्यायोक्तं यदा भग्या गम्यमेवाभिधीयते। (साहित्यदर्पणः)

जब प्रकारान्तर से व्यंग्य बात को ही अभिधा कह दिया जाये तो पर्यायोक्ति अलंकार होता है।

गेहे गेहे हर्षणं बालकानां
कुञ्जे कुञ्जे कूजनं वा खगानां।
जन्तूल्लासं कानने कानने च
दृश्यं च क्रुर्व्यापकस्योत्सवस्य॥
(गङ्गासागरीयम्, गङ्गा-जन्म, १७)

७. विशेषोक्ति अलंकार

सति हेतौ फलाभवे विशेषोक्तिस्तथाद्विधा। (साहित्यदर्पणः)

कारण के होते हुए भी कार्य के न होने पर विशेषोक्ति अलंकार होता है।
पितुर्गेहेवासश्चिरमिह वरेण्यो न दुहितुः
भवत्यस्याश्शोभा स्वपतिसदने ह्येन सततम्।
कथं तल्लोकानां स्थितिमिति च जानन्नपि पिता
शुभात् कार्यादस्मात् कथय सहसा वारयसि माम्॥
(गङ्गासागरीयम्, उद्यौगप्रकरणम्, ४५)
पिता रूप कारण की उपस्थिति में बेटी रूप सुख से न होने के कारण विशेषोक्ति अलंकार है।

८. स्वभावोक्ति अलंकार

स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम्। (काव्यप्रकाशः)

स्वभावोक्ति वह अलंकार है, जहाँ बालक यदि (पदार्थों) की स्व-आश्रित क्रिया तथा रूप आदि का वर्णन किया जाता है। उदाहरण दृष्टव्य है।
फुल्ले कञ्जे कोष बद्धद्विरेफाः
मुक्तिं लब्धवातिप्रसन्ना बभूवुः।
कामार्तानां किन्तु भुक्त्वा परागं
नासीत् तेषां क्वापि मानाभिलाषः॥
(गङ्गासागरीयम्, गङ्गा-जन्म, ६)
गुञ्जन्तस्ते रेभिरे कञ्जकल्यां
वारं वारं तत्र सर्वे भ्रमन्तः।
कल्यः कल्यः गन्धमाघ्राम रेणोः
मत्ता भूत्वा मद्यपानुक्रमेण ॥
(गङ्गासागरीयम्, गङ्गा-जन्म, ७)

९. अर्थान्तरन्यास अलंकार

सामान्यं वा विशेषैण विशेषस्तेन वा यदि
कार्यं च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते।
साधर्म्येणेतरेणायन्तिरम्यासो ष्टधा मतः॥ (साहित्यदर्पणः)

सामान्य-विशेष तथा कार्य-कारण का जहाँ परस्पर समर्थन हो, वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। सामान्य से विशेष का समर्थन गंगापरक प्रस्तुत पद्य में द्दष्टव्य है-

श्रमेणैव सिध्यन्ति कार्माणि लोके
श्रमेणैव लोकोन्तरं चापि लभ्यम्।
श्रमेणैव चोत्कर्षतां यान्ति लोकाः
श्रमं साधयध्वं श्रमं साधयध्वम्॥

(गङ्गासागरीयम्, बाललीला, २६)